भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में राजनीतिक चित्रण

शोधार्थी :- रुमैसा नज़ीर

कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर

भारत लोकतांत्रिक देश है, यहाँ लोगों को शासक चुनने का पूर्ण अधिकार है, जनता के अधिकारों को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है और इनके द्वारा ही चुने गए व्यक्ति के हाथों में राज्य की बागड़ोर सोंपी जाती है | अत: ऐसा व्यक्ति जो लोगों तथा जनता के अधीन कार्य को अंजाम दें वहीं सफ़ल राजनीतिज्ञ कहलाता है |

राजनीति समाज जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है | प्राचीन काल तथा मध्यकाल में राजनीति इतनी महत्वपूर्ण न थीं जितनी आज है, उस समय जिसके पास अपार शक्ति होती वही राजा बनता, जनता की कोई हिस्सेदारी नहीं होती, एक प्रकार का गुण्डाराज था परन्तु समय की निरंतर गति के चलते ये प्रथा समाप्त हो गई और जनता स्वयं के भले-बुरे को समझने लगी और आगे बड़ी | जिसका परिणाम आज हमारे समक्ष प्रस्तुत है परन्तु आज भी कहीं न कहीं ब्रिटिश शासन के बीज हमारे समाज में विद्यमान है 'फूट डालो नीति'| शासन की बागडोर हाथ में आने के पश्चात नेता स्वार्थ केन्द्रित बन बैठे हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि आम जनता जो स्वतंत्रता से पूर्व शोषित थी वह आज भी शोषण का शिकार बनी हुई है | नेताओं का ध्यान जहाँ जनता की भलाई, सुधार व सामाजिक व्यवस्था में होना चाहिए था वहीं वह अपने बैंक एकाउंट्स को भरने में जुटे हुए हैं | अत: शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार ने अपनी जगह बना ली |

आज जनता पहले की अपेक्षा अधिक निराश तथा आक्रोश मय है, उनकी आकांक्षाओं का दमन जोरो-शोर से चल रहा है, जबकि शासन-व्यवस्था लोकतांत्रिक है | राजनितिक उथल-पुथल के कारण जनता का भविष्य भी ड़ांवाडोल है | वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का विघटन अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है | इन्हीं परिस्थितियों से झूझ रही जनता के प्रति साहित्यकारों का ध्यान अग्रसर हुआ जिसके परिणामस्वरूप साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में परिस्थितियों का यथावत चित्रण किया | मानव जीवन में व्याप्त कुंठा एवं तनाव का चित्रण स्वतंत्र्योत्तर साहित्य में हमें देखने को मिलता है |

लेखक सामाजिक प्राणी होने के नाते जो कुछ भी वह अपने आसपास देखता तथा अनुभव करता है उसी को साहित्य के माध्यम से वाणी प्रदान करता है तथा पाठक को वस्तुजगत से अवगत कराता है | जहाँ प्रेमचंद के साहित्य में हमें भारत देश के राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं का विशिष्ट रूप से चित्रण मिलता है, वही विभाजन के पश्चात की समस्याओं के साथ-साथ जगत का दु:ख एवं अशांति का विस्तृत विवेचन साहित्यकारों ने किया है |

भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में भी स्वतंत्रता के पश्चात की स्थिति के दर्शन हमें मिलते हैं | उन्होंने स्वतंत्रता पश्चात की राजनीति का यथार्थ चित्रण कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह सच्चे माने में जनता को सत्य का मार्ग दिखाने में सफ़ल रहे हैं | उन्होंने भोगे हुए यथार्थ का यथावत चित्रण अपने साहित्य में किया है, जो जोखिम भरा कार्य है |

राजनीति के विघत रूप को तुलसीदास इस प्रकार दर्शाते हैं कि "स्वेच्छाचारी राजा प्रजा के हित को सच्ची मंत्रणा पहले तो सुनना ही नहीं चाहता, उसके सारे दरबारी हां-में-हां मिलने वाले चाटुकार लोग होते हैं और यदि कोई हितैषी मंत्रणा दे भी तो उसे भर्त्सना और कठोर दण्ड ही मिलता है"| जनता के हितों के लिए कार्य करने के उपरान्त सभी पार्टियां सत्ती प्राप्ति की होड़ लिए एक-दूसरे के पीछे दौड़ रही है | सत्ता प्राप्ति के लिए ही राजनेता मानव मूल्यों को ताक पर रख अन्याय को समाज में प्रतिष्ठित करते हैं | वुभिन्न पार्टियों के पारस्परिक संघर्ष में आम जनता को कुचला जाता है, न्याय का गला घोंट कर उसकी हत्या की जाती है | "फ़ुटबाल के मैच की तरह विभिन्न राजनीति दल जनता को फ़ुटबाल बनाकर खेल रहे हैं | उसी के नाम पर खेल हो रहे है तथा उसी को ये राजनितिक ठोकरें लाग रहे है"|

चुनाव जीतने के लालच में राजनितिक दल न्याय का नकली आवरण ओड़ जिस पापाचार को बढ़ावा देते हैं भगवानदास मोरवाल ने उसका यथार्थ चित्रण कर जनता को सचेत करने का सफल प्रयास किया है | राजनितिक दल जनता के विश्वासों के साथ आँख मिचोली खेलने का खेल रच रही है | एक दल दूसरे दल के कारनामों का पर्दाफ़ाश करती है तो दूसरा दल भी पीछे नहीं रहता, जिसका परिणाम यह हुआ कि जनता का विशवास किसी भी दल पर नहीं रहता और वह स्वयं को असहाय अनुभव करता है |

भगवानदास मोरवाल ने ***'काला पहाड़'*** में इन्हीं झूठे आश्वासनों से जनता को निराशा की खोह में झूझते हुए दर्शाया है | लोकतांत्रिक देश में चुनाव पद्धति अपने वास्तविक उद्देश्य से हटकर भ्रष्ट हो चुकी है, भ्रष्ट तरीकों से चुनावों को जीता जाता है और इसी को आधार बनाकर भगवानदास मोरवाल ने ***'रेत'*** उपन्यास में रुक्मिणी द्वारा मुरली भाई को झूठे जाल में फंसाकर चुनाव जीतने का प्रकरण भी प्रस्तुत किया है | समाज और राष्ट्र हित का नारा लगाने वाली पार्टी केवल नाम मात्र समाजवादी बन कर रह जाती है, उनका मुख्य कार्य केवल व्यक्तिगत स्वार्थ ही होता है और इनके संदर्भ में अमृतलाल नागर कहते हैं कि- "दम्भी प्रतिक्रियावादी | हिन्दू-मुसलामानों की प्रक्रियावादिता तो साफ़ सामने आ जाती थी | मगर इन मैकाले के बच्चों की प्रगतिशील समाजवाद और साम्यवादी मुखौटे इनकी असली सूरतों को छिपा लेते हैं"|

अत: कहा जा सकता है कि समकालीन राजनीति व्यक्तिवाद से पूर्णत: प्रभावित होती नज़र आती है अर्थात् स्वार्थ आज की राजनीति में मुख्य बिंदु का कार्य करती है, जिससे राजनीति में बदलाव आना संभव है और 'आयाराम-गयाराम' की स्थिति बनी हुई है और इस स्थति से व्यक्ति पूरी तरह उलझ कर रह गया है | राजनीति एक सभ्य-असभ्य मनुष्य को प्रभावित तो करती है, साथ ही वर्तमान जगत की स्थति को देखकर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं है कि आज का मनुष्य केवल सामाजिक प्राणी नहीं है बल्कि वह एक

राजनितिक प्राणी बन चुका है | समकालीन राजनीति आज के मनुष्य को व्यक्तिगत के साथ-साथ उसके अस्तित्व को भी आक्रान्त किए हुए है |

भगवानदास मोरवाल का संबंध गाँव से अधिक होने के कारण उनके साहित्य में गाँव की सुगंध आना तो स्वाभाविक है, साथ ही उन्होंने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनितिक हथकण्डेआदि से पर्दाफाश कराने का प्रयास किया है | मोरवाल ने गाँव तथा शहरी राजनीति को अपने साहित्य में अंकित किया है, जिन लोगों को राजनीति का क-ख भी नहीं पता उनको मोहरा बनाकर सरकार बनाने में नेता लोग आगे रहते हैं | किस प्रकार चुनाव जीतने के लिए भोलीभाली जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया जाता है |

गांधीवाद :- गांधीजी के जीवन-दर्शन को ही गांधीवाद नाम से जाना जाता है | उन्होंने करीब ३० वर्ष तक भारत देश की जनता का संचालन किया और स्वतंत्र प्राप्ति के लिए कभी सत्याग्रह तो कभी ढांडी मार्च किया जिसके फलस्वरूप आज भारत एक आज़ाद तथा सशक्त देश माना जाता है | गांधीजी राजनीति को धर्म तथा नैतिकता को एक सामान दृष्टि से देखने में विश्वास रखते थे | गांधीजी का प्रमुख स्वर 'सत्य मेव जयते' अर्थात सत्य में ही जीत है और यह सत्य गांधीवाद का मूल तत्व बन गया |

भगवानदास मोरवाल ने अपने दो उपन्यासों में गांधीवाद के दर्शन से अवगत कराने का प्रयास किया है | ***'काला पहाड़'*** में विभाजन के दौरान गांधीजी का लोगों को पाकिस्तान जाने से रोकना तथा हिन्दू-मुसलमान में भाईचारा उत्पन्न करने का प्रयास किया है | "जहाँ विभाजन के समय गांधी ने बीच सड़क पर लेटकर पाकिस्तान जा रहे लोगों को रोक लिया था"| बाबरी मस्जिद के विध्वंस के पश्चात देश के कई राज्यों में आगज़नी के हादसे पेश आये और लोगों को मारा-पीटा जिसके चलते गाँव में परिस्थिति इतनी बिगड़ गई कि सलेमी कहता है कि यदि विभाजन के समय गांधीजी ने उन्हें न रोका होता तो वह आज पाकिस्तान में होते और कम से कम इतनी ज़लालत तो न देखनी पड़ती | साथ ही वह गांधी के इस स्वप्न को साकार करने में अपना परम कर्तव्य समझते हैं कि गांधीजी यही चाहते थे कि देश की जनता चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान सब आपस में मिलझुल के रहें और भाईचारे को अपनाए | इसी सिद्धांत को सलेमी आजीवन अपना लक्ष्य मानकर चलता है और अपने हिन्दू मित्रों के समक्ष अपने प्राण त्याग देता है |

जहाँ गांधीजी को कुछ लोग मार्गदर्शक के रूप में अपना गुरु मानते हैं वहीं समाज में ऐसे भी लोग विद्यमान है जो गांधीजी के भक्त केवल दिखावाभर के लिए है वह नाम से तो गांधीवादी हैं परन्तु उनके लिए गांधी जी का नाम केवल धन बटोरने का एक मात्र जरिया है | ***'नरक मसीहा'*** उपन्यास में बहन भाग्यवती 'सर्वोदयी कल्याण सभा' का नाम बदलना चाहती हैं, वह सभा की जगह आश्रम रखने का सुझाव देतीं हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि आश्रम शब्द में गांधीजी का पूरा चिंतन समाया हुआ सा प्रतीत होता है | वह इस वास्तविकता से आचार्यजी को अवगत कराती हैं कि- "आचार्यजी, बापू या गांधी का हमने बहुत तेल निकाल लिया | इनके नाम पर लोगों को बहुत ठग लिया | बहुत खा-कमा लिया | कुछ नहीं बचा है अब इनमें | वैसे भी अपने बापू अब कुलीन बैठकों की शोभा और सरकारी दफ्तरों की डिस्टेंपर उखड़ी दीवारों पर टाँगने-भर की वस्तु बन कर रह गए हैं | गांधी अब लोगों के दिलों में नहीं, इन्हीं बैठकों में बसते हैं | इन्हीं कुलीन बैठकों में बापू के संग बिताए गए पलों की गौरवगाथा सुनाई जाती

है | वो ज़माना गया जब गांधी के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए प्रभात फेरियाँ निकाली जाती थीं"| इसी उपन्यास में आचार्य गंगाधर जनता के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो गांधीजी के पथ पर अपना जीवन यापन करने में ही अपना कर्तव्य समझते हैं | गंगाधर NGO's की दुनिया से हताश हो चुके हैं, और इस दुनिया को जो नरक सामान है उससे दूर रहना चाहते हैं जहाँ वह गांधी के असूलों पर चल सकें, जहाँ सत्य हो, छल-कपट से कोसों दूर हो | उसके अंतर्मन में द्वंद्व चल रहा होता है और आखिरकार वह गांधीजी की आत्मकथा **'सत्य के प्रयोग'** को हाथ में लिए पड़ता है, जिसे पढने के पश्चात वह निश्चिन्त हो कर सांस लेता है |

अर्थात् समाज में गांधीवाद को भलीभांति देखा-परखा जा सकता है | मोरवाल जी ने हमारे समक्ष गांधीजी के अनेक आदर्श तथा मानदण्ड प्रस्तुत किए हैं, और समाज में लोग किस प्रकार उनके सिद्धांतों का प्रयोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं, इसे भी मोरवाल जी ने बड़े ही सशक्त रूप से वाणी प्रदान की है |

ग्राम पंचायत :- प्राचीनकाल से ही भारत की सबसे बड़ी आबादी वाले लोग जो गाँव में रह रहे हैं पंचायत को सर्वोपरि मानते थे, जो समस्त गाँव के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए कार्यरत थी | आज सरकार ने इनकी जिम्मेदारियों में ओर अधिक वृद्धि की है और अब पंचायत के पास पहले से अधिक शक्ति तथा क्षमता है | गाँव में हो रहे झगड़ों को पुलिस कचहरी के बजाये पंचायतों में ही सुलझाया जाता था | पंचायत का फैसला सर्वोमान्य होता साथ ही फलदायी भी | प्राचीन अवस्था में पंचायत का मुखिया गाँव का कोई धनी व्यक्ति या कोई ज़मींदार होता था परन्तु समय के साथ-साथ लोग उसके अत्याचारों व अन्याय से तंग आकर किसी अन्य व्यक्ति को ही अपना मुखिया घोषित करते थे, जो उसके प्रति संवेदन तथा लाभदायी हो | वर्तमान समय में इस पंचायत में भी प्रतिद्वंद्विता नज़र आने लगी और आपसी मन-मुटाव के चलते वह असली स्वरूप से हटकर पथभ्रष्ट हो गयी | जहाँ राजनीति ने सम्पूर्ण समाज के साथ प्रत्येक विभाग में अपना ढेरा जमा रखा है, उसी प्रकार पंचायत भी इस राजनीति नाम के कीड़े से प्रभाव हुए बिना नहीं रह पायी | राजनीतिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों के कारण पंचायत अपने कर्तव्य से विमुख होती नज़र आती है, आशाएँ लुप्त होती दिख रही है |

पंचायत जो न्याय-व्यवस्था का एक सुदृढ़ रूप मानी जाती थी, आज उसमें भी शोषण, दुर्व्यवहार, अत्याचार, अन्याय एवं आपसी वैमनस्य,आदि सभी ने ऐसे जकड लिया है कि चाह कर भी वह स्वयं को इस सब से मुक्त नहीं हो पा रही | और इसका कारण है ग्रामपंचायत में हो रहे चुनावी प्रकरण |

भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास साहित्य में कई ऐसे झांकियां प्रस्तुत की है जिससे पता चलता है कि गाँव में आज भी कहीं न कहीं पंचायत का मान-सम्मान सर्वोपरि है | उन्होंने पंचों तथा पंचायत को ऐसी इज्ज़त बख्शी है कि समाज में पंचायतों का मान ऊंचा सिद्ध हो | ***'काला पहाड़'*** में बाबू खान का रामचन्दर की लड़की से छेड़छाड़ करने पर रामचंद्र पुलिस में न जाकर पंचायत के पास अपनी वेदना प्रकट करता है, जिसे सोंच-विचार कर पंचायत बाबू खान को अपने ही बाप के द्वारा पांच जुटी मारने का निर्णय सुनाती है | पंचों के फैसले का मान रखते हुए सलेमी बाबू खान पर जूतियाँ बरसाने लगता है- "सलेमी ने धीरे से दाएँ पाँव से पणहा निकाली और अपने सामने खड़े बाबू पर एक झटके के

साथ यह कहते हुए तडातड़ बरसानी शुरू कर दी, कमीण, यासु तो तू पैदा होते ही मर जातो.....तैने आज मेरी साड़ी ढकी-ढकाई उघाड़ दी.....!"

'बाबल तेरा देस में' स्त्री को लेकर संकीर्ण मानसिकता का दर्शन हमें देखने को मिलता है, जहाँ शकीला सरपंच बनती है परन्तु नाम मात्र क्योंकि असल में सरपंच का कार्य उसका पति दीन मोहम्मद संभालता है | उनका मानना है कि औरतें घर पर ही अच्छी लगती है और इन कामों से उन्हें दूर ही रहना चाहिए | पंचायत की जो भी कारवाई होती वह दीन मोहम्मद करता साथ ही बाकी पंच-औरतों के बदले उनके पति कार्य संभालते | परन्तु मोरवाल जी ने इस मानसिकता पर करारी चोट करते हुए स्त्री को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है | जब शकीला दृढ़तापूर्वक यह निर्णय लेती है कि वह सरपंच पद से इस्तीफा देगी परन्तु वास्तव में नहीं देती, तो सारे घर-परिवार के साथ-साथ दीन मोहम्मद और उसके पंच साथी विचलित होते हैं, उन्हें उनकी पुरुषार्थ पर संदेह होने लगता है | शकीला अन्य महिला पंचों के साथ मिलकर बीडीओ दफ्तर जाकर सारे सरकारी कागज़ो पर स्वयं हस्ताक्षर करती हैं और एक नई मिसाल कायम करती हैं |

मोरवाल जी ने ***'रेत'*** उपन्यास में पंचायत का विस्तारपूर्वक वर्णन हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है | "पंचायत शुरू होने से पहले मुखिया ने पंचायत के सारे कायदे-क़ानून खोलकर पंचों के सामने रख दिए, पंचों आज की पंचायत में जो पंच तय किए गए है, वे दोनों मुदी की रजामंदी से तय किए गए है....."| दोनों मुदों की धराड तय होने के पश्चात् पंचायत पंचों के खर्चे को भी साफ़ कर देती है-"और पंचों, चीरणी से पहले यह बात बतानी ज़रूरी है कि अगर पंचों का फैसला न माना गया, तो दोनों मुदी की धरोड़ पंचात जप्त कर लेगी.....एक बात और कि अगर किसी मुदी ने धराड के बारे में पुलिस को खबर दी, तो उसकी धरोड़ का इस्तेमाल पुलिस के काज में होगा"| "पंचों यह तो दोनों मुदी की तरफ से हुई धरोड़ | अब दोनों मुदीपंचों के खर्चे के लिए तीन-तीन हजार, फैसला होने तक धरोड़ रखनेवाले को दिए जानेवाले दो सौ रुपए रोजाना के हिसाब से और पंचों को पानी पिलानेवाले को सौ रुपए...कुल मिलाके पाँच-पाँच हजार और दें"|

इस प्रकार देखा जा सकता है कि पंचायत की गांववालों के सामने क्या मान्यता है, कुछ भी हो जाए उनके लिए पंचायत सर्वोपरि है और उनका फैसला अंतिम फैसला माना जाता है | गाँव की किसी भी बात को पुलिस तक जाने ही नहीं दिया जाता, वहां पंचायत ही उच्च-सतरीय न्यायालय है | ***'हलाला'*** उपन्यास में जब नियाज़ नजराना को तलाक देता है और कुछ समय पश्चात उसे अपनी गलती का एहसास होने लगता है तो वह नजराना को फिर से अपनी बीवी के रूप में वापस चाहता है परन्तु नजराना का कहना है कि जब तक नियाज़ और उसका बाप भरी पंचायत के सामने उनसे माफ़ी नहीं माँगेंगे तब तक वह वापस नहीं जाएगी | माफ़ी मांगने के पश्चात नज़राना पंचायत के फैसले के विरुद्ध जाती है और अपने अस्तित्व को पहचानने लगती है और यह निर्णय लेती है कि वह क्या कोई लत्ता कपडा है जिसे जब चाहे उतार के फैंक दिया और जब जी में आया पहन लिया |

अर्थात पंचायत के फैसले को अमान्य करार देते हुए नज़राना स्वयं के लिए न्याय करती हैं | सामाजिक चेतना को प्राप्त कर प्रजा अपने अधिकारों को जान-समझ सकती है, हर संदर्भ में मुखिया द्वारा दिए गये निर्णय पर निर्भर न रहकर स्वयं भी समस्या का समाधान खोज सकती है | इस प्रकार मोरवाल जी ने आज के कतिपय समाज में परिवर्तन की ओर संकेत किया है | एक चेतना संपन्न व्यक्ति पंचायतों के अधिकारों से समाज तथा पंचायत को अवगत करा सकता है और अधिकारों के दुरूपयोग पर उन्हें रोकने का साहस भी रखता है |

राजनितिक कूटनीति :- राजनीति के लिए यह वाक्य प्रचलित है कि-'Politics is a dirty game' अर्थात राजनीति एक गंधा खेल है, एक ऐसा चक्रव्यूह है जिसमें एक बार व्यक्ति फंस गया तो उसका वहाँ से लौट के आना असंभव सा प्रतीत होता है | वह इस दल-दल में ऐसे फंस जाता है कि चाह कर भी वह उससे बाहर नही आ पाता, बल्कि जितना वह बाहर आने का प्रयत्न करेगा उतना ही वह उसमें धस्ता चला जाएगा | अंत में वह उसी में अपना बाकी जीवन यापन करने पर विवश होता है, जहाँ वह भोलीभाली जनता को मुर्ख तथा लूटने में लगा रहता है | भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास साहित्य में राजनीति पर व्यंग्य कर उसपर करारी चोट लगाई है | उनके उपन्यासों में जहाँ राजनीति के विभिन्न हथकण्डों से पर्दा हटाया गया है वहीं राजनेताओं की गंधी चालों से आम जनता को उसका भुगतान कर वास्तविकता से अवगत कराया है | किस प्रकार एक पार्टी का नेता दूसरी पार्टी पर कीचड़ उछालता है और जनता को झूठा आश्वासन दे कर उनकी भावनाओं के साथ खिलवाड़ करता है |

मोरवाल जी ने सरकार में चल रहे प्रधानमंत्री वाजपायी जी पर इस प्रकार व्यंग्य किया है कि "देश को आज़ाद हुए आधी सदी बीतने को आ रही है और प्रधानमंत्री जी को शिलानियास करने की सुध अब आई है? अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति को गुज़रे हो गया एक सदी से ऊपर और बहादुर मेवों की याद आ रही है अब? क्या संगत बैठाई है प्रधानमंत्री जी ने"| भगवानदास मोरवाल ने ***'काला पहाड़'*** नामक उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग हैं जहाँ से ज्ञात होता है कि राजनीति में आते ही एक व्यक्ति कितना घिर सकता है | "मुख्य-मंत्री ने इसके बाद भावुक होने की मुद्रा बनाते हुए पहले धीरे-से चश्मा उतारा और फिर जेब से रुमाल निकाल कर आँखों को पोंछते हुए दूर-दूर तक फैले लोगों को एकदम चुप बैठा देखकर मन ही मन सोचा कि गाड़ी एकदम सही चल रही है"| यहाँ तक कि मोरवाल जी के गुस्से को इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से जाना तथा समझा जा सकता है-"अरे, इन्ने अपणो पेट भरना सू फुरसत मिले जभी न"|

सुलेमान के घर आग की वारदात के पश्चात पूरे मोहल्ले की धडकनें जैसे रुक सी गयी | राजनितिक दल एक-एक कर सांत्वना देने चले आए परन्तु गाँववालों के गुस्से को साफ़ तौर पर देखा जा सकता है- "चौस्साब, फिकर तो हम पिछले पचास बरस सू ना करता आ रा हैं अब कहा करेंगा.....अरे, मुददत सू ई सुनणा में आ री है के या इलाका में रेल की पटड़ी बिछेंगी.....नहर निकालेंगी.....फैकटरी लगेंगी.....चलो, अब कम सू कम आग बुझाणा की मोटर तो आ जांगी.....और नाएँ तो अब जब आग लगेगी बुझ तो जाएगी....."| साथ ही सलेमी के माध्यम से मोरवाल जी यह कहने से नहीं चूकते हैं कि "ई तो हमीं बावला हैं जो तमन्ने बिरादरी और गोत के नाते बोट दे देवे हैं.....नहीं तिहारो इलाज तो जो है वाहे सब जाणे

हैं.....इलाका तो एक-एक बूँद पाणी कू तरस रो है, और तुम हो के तिहारा जी सू चाहे ई इलाको मरे या जीवे.....पाणी होतो तो आज ये दिन ना देखण पड़ता.....ऊ कर करे हैं न के 'जल हीरा, जल जौहरी, जल दुनिया को माल; जल की माया मीर खां, जल बिन जगत कंगाल'....."|

'बाबल तेरा देस में' तथा ***'रेत'*** उपन्यासों में भगवानदास मोरवाल ने राजनीति की ड़ोर स्त्रियों के हाथों में थमा दी है | वह यह बताने का प्रयास करते नज़र आते हैं कि स्त्रियाँ जो आज पुरुषों के समान अधिकारनीय है, उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है, वह अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखने को लालायित है तथा हर क्षेत्र में आगे हैं, वह राजनीति में आकर अपने कार्य को अच्छे से अंजाम दे सकती हैं | पुरुषों के मुकाबले स्त्रियाँ एक राज्य का तथा एक देश को उन्नति के मार्ग पर ले जाने में सक्षम सिद्ध हो सकती है |

'बाबल तेरा देस में' शकीला सरपंच बन जाती है परन्तु उसका पति उसे केवल इसलिए चुनाव में नामांकन बरवाता है क्योंकि शकीला पढ़ी-लिखी होने के कारण चुनाव आसानी से जीत सकती है और वह चुनाव जीतने के बाद शकीला को घर पर ही रहने को कहेगा और खुद सरपंच का पद संभालेगा | शकीला से केवल दस्तख़त लिए जाते हैं परन्तु जब पचीस हज़ार का बिल उसे दस्तख़त के लिए दिया गया तो वह साफ़ मना करती हैं क्योंकि उसकी नज़रों में पचीस हज़ार का काम हुआ ही नहीं है और स्वयं बीडीओ दफ्तर जा कर उन्हें उनके कर्तव्य के प्रति जागृत करती हैं | 'रेत' में रुक्मिणी जो कि पेशे से खिलावड़ी है अर्थात् वेश्या है पर राजनीति में अपने पैर जमाने के लिए मुरली बाबू को झूठे जाल में फंसाती है जिसके परिणामस्वरूप मुरली बाबू का धर्मपुरा क्षेत्र से भरा हुआ चुनावी नामांकन रद्द किया जाता है और समाचार पत्रों के माध्यम से उसका पत्ता काट देती हैं- "अश्लील सीडी प्रकरण में फंसे मुरली की बंसी रुक्मिणी ने चुराई"| जिससे मुरली बाबू का राजनीतिज्ञ जीवन एक ही झटके में समाप्त हो जाता है परन्तु इन कूटनीतियों के बावाजूद्द रुक्मिणी स्वयं को एक अच्छी तथा ज़िम्मेदार नेता साबित करने में सफल होती हैं, वह गाजुकी की काया ही पलट देती है |

रुक्मिणी जब राज्य की मंत्री के नाते शप्त लेती है तो वह ईश्वर की जगह सत्यनिष्ठा कहती हैं और वैद्यजी के माध्यम से पाठक के समक्ष इस सत्य से पर्दा उठाने का प्रयास करती हैं कि राजनेता ईश्वर के नाम पर केवल झूठी शपथ लेते है, उनमे ईश्वर का कोई खोफ नहीं | "वैसे सच कहूँ बैद्जी, ईश्वर की शपथ लेकर वैसे भी मुझे करना क्या है | जिन्होंने ऐसी कसमें ली हैं क्या वे भी या पक्षताप, अनुराग या द्वेष से बाख पाए हैं-नहीं न? इसलिए बैद्जी, क्यों उसकी झूठी शपथ लेकर उसकी गुनाहगार बनूँ...करना तो मुझे वही है, जो दूसरे अपने-अपने भगवानों के नाम पर झूठी शपथ लेकर करते हैं"| ***'नरक मसीहा'*** उपन्यास में भी राजनीति के कुछ अनकहे दृश्यों को वाणी प्रदान कर मोरवाल जी ने इनकी पोल खोलने का सफल प्रयास किया है | कबीर को रियल हीरोज़ नाम का अवार्ड दिए जाने पर कोमरेड 'प्रचंड' कबीर की इस विजय को मान्यता नहीं देते उनकी नज़र में कबीर को यह अवार्ड आदिवासियों और गरीब दलितों के सपने सरकार के हाथ गिरवी रखने पर मिला है और उसपर व्यंग्य कसते हैं "वैसे कसूर तुम्हारा नहीं है पार्टनर, क्योंकि सत्ता और व्यवस्था में भागीदारी के बिना इतनी खव्वाहिशों को पूरा नहीं किया जा सकता..."|

इस प्रकार देखा जा सकता है कि राजनीति एक भले व्यक्ति को क्या से क्या बना देती है, वह अपनी चपेट में आये किसी को भी प्रभावित हुए बिना नहीं छोडती, जहाँ हर व्यक्ति भ्रष्टाचार के तवे पर अपनी रोटी सेंकना कहता है और कुछ हद तक सेंक भी चुके हैं अर्थात् राजनीति में रहते-रहते व्यक्ति ऐसी चालें सीख ही जाता है जिससे वह स्वार्थपूर्ति करने में सफल हो जाता है | वस्तुतः राजनीति में आम जनता को ही भली का बकरा बनना पड़ता है |

भ्रष्ट-प्रशासन :- भ्रष्ट अर्थात् बिगड़ा हुआ, दूषित तथा बेईमान | सामाजिक विकास के लिए जो अंग महत्वपूर्ण है वह है राजनीति, न्याय, पुलिस, इत्यादि व्यवस्थाओं का आपसी सहयोग | परन्तु यदि देखें तो यह व्यवस्थाएँ नीति से दूर होती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप जनता का इन व्यवस्थाओं के प्रति विश्वास उठना स्वाभाविक है | जहाँ राजनीति में अवसरवादिता आ गई वहीं न्याय-व्यवस्था में भ्रष्टता, पुलिस की तानाशाही ने जनता को त्रस्त कर दिया है | इन्हीं स्थितियों का यथार्थ चित्रण कर भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यासों में इनका नग्न रूप पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है | पुलिस जो जनता की सुरक्षा के लिए नियुक्त की जाती है वही तानाशाह बनकर जनता में आक्रोश का कारण बन बैठी है | पुलिस प्रशासन जहाँ अपराधों को नियंत्रित कर शान्ति बनाए रखने के लिए है वही आज अपनी शक्ति का दुरूपयोग कर तनाव को ओर हवा देने में जुटी नज़र आती है |

'काला पहाड़' में स्वास्थय विभाग पर करारी चोट करते हुए भगवानदास मोरवाल यह कहने में संकोच नहीं करते कि जिन डॉक्टरों को ईश्वर का दूसरा रूप माना जाता है वही आज वरदान की जगह अभिशाप बन चुकी है | जान बचाने के बजाए वह मृत्यु के कगार पर पहुँच चुके व्यक्ति से भी पैसे एंठते नहीं हिचकिचाते | "यही हाल यहाँ के इकलौते उस प्राथमिक स्वास्थय केंद्र का है जिसका डॉक्टर ग़रीब मरीज़ों से खुल्लमखुल्ला सरकारी दवाइयों के पैसे लेने से नहीं चूकता है, और इलाज तक की उसने बाक़ायदा फ़ीस तय की हुई है" |

बाबरी मस्जिद के विध्वंस के दौरान जब पूरा गाँव आग के दरिये में परिवर्तित होता नज़र आया और जो पुलिस भीड़ पर काबू करने के लिए भेजी गई, वह काबू करने के बजाए तमाशा देखने में व्यस्त दिख रही है- "सिपाई-विपाई तो घणाई हैं ताऊ.....पर वे तो मजा सू तमासो देख रा हैं और मैंने तो एक सिपाई का मूँ सू ई भी सुणी ही के, ऊ एक आदमी सू कह रो हो अरे, तुम या बडकली पे काँई लू धूमस कर रा हो हून नाघीणा में जाओ और कुछ दुकान-वुकान लूटो"| अर्थात् परिस्थितियों को काबू में करने के बजाए वह लोगों को भड़काने में अपना समय व्यतीत करती है | ***'बाबल तेरा देस में'*** प्रशासन पर व्यंग्य कसते हुए बड़ी ही मिठास के साथ मुबीन के माध्यम से मोरवाल जी कहते हैं "अब भूल जाओ बूढा बाप | वो बखत गया जब पन्द्रह-बीस हजार देके चपड़ासी की नौकरी मिल जावे ही | अब तो चपड़ासी का रेट भी बहोत ऊँचा हो रो है, बल्कि चपड़ासी सू मास्टरी मिलनी फिर भी आसान है"| ***'रेत'*** उपन्यास में रिश्वत खौर पुलिस के दर्शन होते नज़र आते है, जहाँ वह अपनी कमाई देह-व्यापार करती औरतों से करते हैं | "अरे, इतनी आसानी से इस पर अमल हो गया तो इन दरोगाओं की कमाई कैसे होगी...रोज नई-नई खिलावडी कैसे मिलेंगी"| और जब थानेदार झूठा रोब जमाकर कहता है कि यहाँ कोई धंधा नहीं होगा पर कुछ समय पश्चात वह नरम पड़ता हुआ वहां से चला जाता है, जिसपर कमला बुआ वैद्यजी को समझाती है कि-"मरे,

इन कुत्तों को हमसे बनाके रखना जरूरी है | ना रखेंगे तो इनकी कमाई कहाँ से होगी | महीना ऐसे ही बाँध रक्खा है"| इतना ही नहीं बल्कि रुक्मिणी वैद्यजी से एक ओर रहस्य से अवगत कराती हैं कि-"बैद्जी, हमारा और इस पुलिस का तो जूँ और घाघरी जैसा नाता है | न जूँ से घाघरी छोड़ते बनती है, ना घाघरी से जूँ | वैसे भी हम पुलिस से बनाकर ना रखें तो हमें कौन जीने दे | पता है धरमपुरा कोतवाली में आने के लिए पुलिस महकमे में मोटी रकम चढ़ाई जाती है"| इस प्रकार भगवानदास मोरवाल जी ने पुलिस प्रशासन में भ्रष्टाचार तथा इस पद के साथ अन्याय करते हुए दर्शाया है | वह पुलिस के प्रति निराश तो है ही साथ ही उन्हें अपने रक्षक अब भक्षक लगते हैं, जिनका काम केवल लोगों में तनाव उत्पन्न करना है और अपनी जेबें भरना है | मोरवाल जी ने जहाँ सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार को बड़ी ही मार्मिकता के साथ उजागर किया है वहीं वह एनजीओज़ (NGO's) की दुनिया का पर्दाफ़ाश करने में भी पीछे नहीं रहे हैं | किस प्रकार गरीबों के लिए विदेशों से आई धन राशि को हड़प कर अपने एकाउंट्स भरे जाते हैं, कुछ हिस्सा खर्च करके किस तरह उन पैसों को पूरा दिखाकर उनका बिल बनाया जाता है, धोखे से गरीबों की ज़मीनें छीन ली जाती है | उन्हें जान बूझ कर कर्ज़े में डुबाया जाता है ताकि वह उसे उतार न सकें और उनकी ज़मीन उनके हाथ से निकल जाती है | ***'नरक मसीहा'*** उपन्यास में ऐसे ही प्रसंगों के बिम्ब हमारे सामने प्रकट होते हैं, जहाँ मिसेज़ मौर्य आचार्यजी पर इस बात को लेकर व्यंग्य करतीं हैं कि वह कुछ ज्यादा ही ईमानदारी से काम करते हैं उन्हें NGO's में काम करने का हक़ नहीं है | "कैसे-कैसे लोग NGO बनाकर सामाजिक कल्याण और बदलाव का भार अपने कंधों पर ले लेते हैं | इन्हें यह तक नहीं पता कि सरकारी धन को कैसे ठिकाने लगाया जाता है"| इसी प्रकार ***'सुर बंजारन'*** उपन्यास में जब रागिनी वर्कशॉप में लगे पैसों के लिए दफ्तर जाती है तो वहाँ से निराश होकर लौटती हैं, उसका मन यह सोंचकर विचलित होता है कि उसे अपने ही पैसों के लिए रिश्वत माँगी जा रही है | और अंत में डॉ. नूपुर शर्मा से मिलती है जहाँ वह उन्हें समाज की इस वास्तविकता से परिचित कराती है कि-"इनका बस चले तो ये मुर्दों का कफ़न भी नोंच लें"|

भ्रष्टाचार ने किसी भी विभाग को अछूता नहीं रखा पुलिस जो शासन की न्याय-बुद्ध का प्रतीक समझी जाती है, वह पथभ्रष्ट हो कर अन्याय को प्रतिष्ठित करने में जुटी हुई है | ***'वंचना'*** उपन्यास में जब जानकी बाल-विवाह को रोकने के लिए रामकरन के घर पुलिस ले के जाती है तो वहाँ पहुँचकर जानकी की काया ही पलट जाती है- "पुलिस को देखते ही रामकरन के तन-बदन में आग लग गई उसने पुलिसवाले को पहले लड्डू खिलाए और जाते-जाते उसके हाथ में एक पचास का नोट धर दिया"|

हमारे समाज में न्याय-पालिका को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है | कहा जाता है कि जिस देश की न्याय-पालिका स्वस्थ हो, न्याय पर आधारित हो वहाँ की जनता को अपने अधिकारों के साथ-साथ सुकून भी प्राप्त होता है कि कहीं कुछ भी गलत नहीं हो सकता परन्तु जिस राज्य की न्याय-पालिका ही सुस्त हो वहाँ से जनता निराश तथा हथप्रभ होती नज़र आती है | ***'वंचना'*** उपन्यास में जानकी के साथ हुए बलात्कार के जुर्म में रामकरन को अदालत भरी कर देती है | अदालत की राय थी "इज्ज़तदार और बड़ा आदमी किसी का, वो क्या कहते हैं बलात्कार कर ही नहीं सकता | दूसरा, यह कहा कि कोई मर्द अपने किसी सगे-सम्बन्धी के आगे ऐसा काम नहीं कर सकता | कोई अगड़ी जाति का मर्द किसी छोटी जाति की औरत के

साथ इसलिए ऐसा गलत काम नहीं कर सकता क्योंकि वह मैली होती है"| इसी उपान्यास में इस देश की प्रशासन व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए भगवानदास मोरवाल जी यहाँ की सरकार तथा आम जनता को सचेत करते हुए, समय पर आँखें खोलने का सन्देश देते हैं कि "ग़ज़ब है | बिना पढ़े रिकॉर्ड रूम में भेज दिया | अब बताओ ऐसे में मुजरिम आज़ाद नहीं घूमेंगे तो क्या जेल में होंगे | यानि जिस निचली अदालत की तरफ़ से कातिलों के खिलाफ वारंट जारी होना चाहिए था, वहाँ तक फ़ाइल पहुँची ही नहीं"| यह छोटा सा प्रसंग परन्तु इसमें भारत की न्याय-व्यवस्था का एक कटुसत्य हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है कि जिस देश की अधिकतम आबादी निम्न वर्ग की है, वहाँ उन्हें न्याय मिलना तो दूर मुजरिम खुले में सांस लेने को आज़ाद है | यहाँ की न्याय-व्यवस्था उन्हें दूसरा जुर्म करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देती है | वकील भी अपनी जेबें भरने के लिए कई तरह के हथकंड़े अपनाते हैं जैसे '***वंचना***' उपन्यास में वकील ब्रजनंदन को अपने वरिष्ठ का दिया हुआ गुरुमंत्र याद आता है- "मुवक्किल से अपनी फीस तभी ले लेना, जब उसकी आँखों में आँसू या हाथ में हथकड़ी पड़ी हो | आँसू सूखने और हथकड़ी खुलने के बाद कोई भला आदमी फीस नहीं देता"|

इस प्रकार देखा जा सकता है कि मोरवाल जी ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त राष्ट्रीय भावना के स्वरों को जागृत करने का सशक्त प्रयास किया है | उनका मानना है कि आज की राजनीति का स्थान वैसा ही है जैसा मध्ययुग में धर्म का था | राजनीति ने धर्म एवं संप्रदाय को आधार बनाकर समाज में तनाव, भय व आतंक को जगह दी है जिससे जनता के मन में अपने अधिकारों तथा सुरक्षा के प्रति संदेह बना रहता है और वह अनगिनत समस्याओं से झूझते हुए नज़र आते हैं |